शिक्षा-ग्रन्थों में उच्चारण सम्बन्धी गुण-दोष विवेचन

ISSN 0975 1254 (PRINT)
ISSN 2249-9180 (ONLINE)
www.shodh.net
A Refereed Research Journal
And a complete Periodical dedicated to
Humanities & Social Science Research
शोध संचयन

बीज शब्द : वेद, शिक्षा, व्याकरण, वेदांग, भाषा, भाषा विज्ञान, संस्कृत।

वेद 'विद' धातु से निष्पन्न है जिसका अर्थ है 'ज्ञान'। समस्त ज्ञान वेदों पर ही आश्रित है। वेदों का ज्ञान अपेक्षाकृत दुरूह होने के कारण षड् वेदांगों का निर्माण हुआ जिनमें शिक्षा प्रमुख वेदांग है, क्योंकि इसमें उच्चारण विधि का प्रतिपादन किया जाता है जो वैदिक साहित्य में नितांत महत्व रखता है। मन्त्रों का अशुद्ध अभीष्ट अर्थ को प्राप्त न कर फलसिद्धि का हेतु नहीं होता तथा यजमान के लिए अनिष्टकारक सिद्ध होता है।

इस उच्चारण विधान के गौरव को देखते हुए प्रस्तुत विषय के अन्तर्गत उच्चारण सम्बन्धी गुण-दोषों का विवेचन किया गया है जो शिक्षा ग्रन्थों का मुख्य विषय है। गुणों का ग्रहण तथा दोषों का परित्याग वेद मंत्रों का शुद्ध उच्चारण करने के लिए वेदाध्येताओं को समर्थ बनाकर मंत्रों का यथोक्त फलदायित्व सुरक्षित करता है। फलतः शुद्ध उच्चारण हेतु गुण-दोषों का ज्ञान आवश्यक है और यही प्रस्तुत शोध आलेख का प्रतिपाद्य है।

शुभ्रा त्रिपाठी
'शक्ति दीप',
११२ए, उत्तरी हुमायूँपुर,
हड़हवा फाटक रोड,
गोरखपुर।

वेद भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति की अमूल्य निधि है, जो आज भी वैज्ञानिक उपलब्धियों के बीच अपने ज्ञान गौरव की अक्षुण्णता का आबाध उद्घोष कर रहे हैं। वेदों को ही आधार मानकर भारतीय दार्शनिक, धार्मिक तथा सामाजिक ज्ञान का संवर्द्धन एवं विकास हुआ। अतः वेदों का अनुशीलन तथा उनके मौलिक सिद्धान्तों एवं तथ्यों का उद्घाटन ज्ञानवर्द्धन एवं उन्नयन के लिए अपरिहार्य है।

वेदों का ज्ञान दुरूह होने के कारण कालान्तर में अगली पीढ़ी की सुविधा के लिए तथा वेदों की सुरक्षा के लिए वेदांगों का निर्माण किया।[1] वेदों की संख्या छः है- (1) शिक्षा, (2) कल्प, (3) व्याकरण, (4) निरुक्त, (5) छन्द, (6) ज्योतिष।

वेदरूपी पुरुष की 'शिक्षा' नासिका है, 'कल्प' हाथ है, 'व्याकरण' मुख है, 'निरुक्त' श्रोत है, 'छन्द' पैर है तथा 'ज्योतिष' चक्षु है।[2]

इनमें 'निरुक्त', 'शिक्षा' तथा 'व्याकरण' का सम्बन्ध भाषा से है। मूल वैदिक परम्परा में 'शिक्षा' को वेद का प्रथम अंग माना गया है। वेद वर्णराशिरूप है। वर्ण वेद के सबसे छोटे तथा प्रारम्भिक अवयव हैं। शिक्षा का मुख्य विषय वर्णों का उच्चारण है। अतः शिक्षा का वेदांगों में प्रथम होना स्वाभाविक है।

वैदिक साहित्य में स्वर, वर्ण आदि के समुचित उच्चारण का नितान्त महत्त्व है। इसका कारण है 'अर्थ नियामकता' अर्थात् शब्द के एक होने पर भी स्वर भेद से उसका अर्थभेद हो जाया करता है। स्वरों में एक साधारण भी त्रुटि हो जाने पर अर्थ का अनर्थ हो जाया करता है। यज्ञ का यथावत् निर्वाह इसलिए कठिन व्यापार है। इस विषय में एक अत्यन्त प्राचीन आख्यायिका प्रचलित है। प्रसिद्धि है कि वृत्र ने अपने शत्रु इन्द्र के विनाश के लिए एक वृहद् यज्ञ का आयोजन किया। होम का प्रधान मन्त्र था- "इन्द्र शत्रुर्वर्धस्व'' जिसका अर्थ है इन्द्र का शत्रु अर्थात् घातक विजय प्राप्त करे। इस प्रकार 'इन्द्रशत्रुः' शब्द में 'इन्द्रस्य शत्रु' यह षष्ठी तत्पुरूष समास अभीष्ट था, परन्तु यह अर्थ तभी सिद्धहो सकता था जब 'इन्द्रशत्रुः' अन्तोदात्त हो। प्रमादवश ऋत्विजों द्वारा अन्तोदात्त के स्थान पर आद्योदात्त ('इन्द्र' शब्द के 'इ' पर) उच्चार किया गया। इस स्वर परिवर्तन से यह शब्द तत्पुरुष समाज के स्थान पर बहुव्रीहि बन गया तथा अर्थ हो गया 'इन्द्रः शत्रुः यस्य' अर्थात् इन्द्र जिसका शातयिता/घातक है। इस प्रकार यज्ञ यजमान के लिए ठीक उल्टा ही सिद्ध हुआ। जो यज्ञ यजमान की फल सिद्धि के लिए किया गया था, वही, उसके लिए घातक सिद्ध हुआ। इसलिए शिक्षा ग्रन्थों में स्पष्ट उद्घोष

है कि जो मन्त्र स्वर या वर्ण से हीन होता है वह मिथ्या प्रयुक्त होने के कारण अभीष्ट अर्थ का प्रतिपादन नहीं करता तथा वाग्वज्र बनकर यजमान का ही नाश कर देता है। जिस प्रकार स्वर के अपराध से 'इन्द्र शत्रु' शब्द यजमान का ही विनाशक बन गया।[3]

इस प्रसंग में हम वेदों के उच्चारण विधान के गौरव को भली-भाँति समझ सकते हैं। अत: स्वर, वर्णादि के उच्चारण प्रकार को बतलाकर उनके दोषों के परिहार के लिए 'शिक्षा' नामक अंग अपेक्षित है।

शिक्षा व्याकरण से भी पूर्व आवश्यक होती है। इस बात को पाणिनीय व्याकरण के भाष्यकार पतंञ्जलि मुनि ने भी स्वीकारा है।[4]

'शिक्षा' का अर्थ है वैदिक मन्त्रों की उच्चारण विधि का प्रतिपादक ग्रन्थ। आचार्य सायण ने 'शिक्षा' का लक्षण करते हुए कहा है कि जिस ग्रन्थ में स्वर, वर्ण आदि के उच्चारण का प्रकार सिखाया जाता है, उसे शिक्षा कहते हैं।[5]

तैत्तिरीयोपनिषद् में शीक्षा (शिक्षा) के छ: प्रकार और कहे गये हैं।[6]

1. वर्ण
2. स्वर
3. मात्र
4. बल
5. साम
6. सन्तान

'वर्ण' से अभिप्राय अक्षरों से है। वेद के ज्ञान के लिए संस्कृत वर्णमाला में 63 या 64 वर्णों की संख्या निर्धारित की गयी है। यह केवल संस्कृत में ही नहीं प्रत्युत वैदिक काल में प्रत्युत प्राकृतों के लिए भी यही नियम था।[7]

'स्वर' से अभिप्राय 'उदात्त', 'अनुदान' और 'स्वरित' से है।[8]

'उदात्त' उच्च स्वर को कहते हैं।[9]

'अनुदात्त' निम्न स्वर को कहते हैं।[10]

'सम' स्वर को 'स्वरित' कहते हैं।[11]

'मात्र' से अभिप्राय है स्वरों के उच्चारण में लगने वाला समय। यह तीन प्रकार का है- 'स्व', 'दीर्घ' और 'प्लुत'।

एक मात्र के उच्चारण में जितना समय लगता है उसे 'स्व', दो मात्र के उच्चारण में लगने वाले समय को 'दीर्घ' तथा तीन मात्र के उच्चारण में लगने वाले समय को 'प्लुत' कहते हैं।[12]

'बल' का तात्पर्य स्थान और प्रयत्न से है। स्वर तथा व्यञ्जन के उच्चारण के समय वायु मुख के जिन स्थानों से टकराती हुई बाहर निकलती है उन वर्णों के वे 'स्थान' कहे जाते हैं। ऐसे स्थानों की संख्या 8 है।[13]

1. उरस्
2. दन्त
3. कण्ठ
4. नासिका
5. शिरस् (मूर्धा)
6. ओष्ठ
7. जिह्वामूल
8. तालु

अक्षरों के उच्चारण में जो प्रयास करना पड़ता है उसे 'प्रयत्न' कहते हैं। यह दो प्रकार का होता है।

1. अभ्यन्तर यत्न
2. बाह्य यत्न

आभ्यन्तर प्रयत्न 5 होते हैं- (1) स्पृष्ट, (2) ईषत्स्पृष्ट, (3) ईषद्विवृत, (4) विवृत, (5) संवृत।

बाह्य यत्न 11 होते हैं- (1) विवार, (2) संवार, (3) श्वास, (4) नाद, (5) घोष, (6) अघोष, (7) अल्पप्राण, (8) महाप्राण, (9) उदात्त, (10), अनुदात्त, (11) स्वरित।

'साम' का अर्थ है 'साम्य' अर्थात् दोष से रहित तथा माधुर्यादि गुणों से युक्त उच्चारण।

'सन्तान' शब्द का अर्थ है 'संहिता' अर्थात् पदों की अतिशय सन्निधि। पदों का स्वतन्त्र अस्तित्व रहने पर कभी-कभी दो पदों का आवश्यकतानुसार शीघ्रता से एक के अनन्तर उच्चारण होता है, इसे ही 'संहिता' कहते हैं। संहिता होने पर ही पदों में सन्धि हुआ करती है।

तैत्तिरीयोपनिषद् में उल्लिखित शिक्षा की व्याख्या को ही कौण्डिन्यायन शिक्षा में कुछ विस्तृत रूप में कहा गया है। इसके अनुसार वर्णों, स्वरों, मात्र, बल, साम तथा संहिता का विचार जहाँ प्राप्त होता है, उससे सम्बद्ध अन्य विषय जहाँ वर्णित होते हैं, वह ही प्रथम विद्या है जो शिक्षा के नाम से जानी जाती है।[14]

ऋग्वेद प्रतिशाख्य में कहा गया है कि स्वर, वर्ण आदि के उच्चारण का उपदेश करने वाला शास्त्र 'शिक्षा' है।[15]

प्राचीन वेदांग शिक्षा के लिए वर्तमान में ध्वनि विज्ञान शब्द का प्रयोग होता है। 'शिक्षा' का सम्बन्ध सामान्यत: ध्वनि से था। ध्वनियों का स्थान, करण और प्रयत्न के आधार पर विश्लेषण और वर्गीकरण 'शिक्षा' के द्वारा होता था। इसलिए अध्ययन का प्रारम्भ शिक्षा से ही होता था।

इसके अन्तर्गत मूलरूप से ध्वनियों का अध्ययन किया जाता है जो भाषाशास्त्र की आधारशिला है। इसी कारण 'शिक्षा' को वेदरूपी पुरुष की नासिका कहा गया है।[16] यदि शिक्षा रूपी नाक कट गयी तो वेद की सारी मर्यादा, सारा अर्थ अनर्थ में परिणत हो जायेगा। इस दृष्टि से शिक्षा ग्रन्थों का नितान्त महत्त्व है।

शिक्षा का मुख्य प्रयोजन वेद की उच्चारणशुद्धि की रक्षा करना, यज्ञादि वेदमन्त्रों का शुद्ध उच्चारण करने के लिए वेदाध्येताओं को समर्थ बनाना और मन्त्रों का यथोक्त फलदायित्व सुरक्षित करना है। यह बात पाणिनीय शिक्षा में (श्लो0 52), चारायणीय शिक्षा में (4/1), नारदीय शिक्षा में (1/1/5) आये हुए वचनों से स्पष्ट है। व्याकरण शास्त्र में भी इस पर बल दिया जाता रहा है।

नारदीय शिक्षा में शुद्ध उच्चारण के महत्त्व का प्रतिपादन करते हुए कहा गया है कि जो स्वर और वर्ण के शुद्ध उच्चारण से हीन विकृत मन्त्र यज्ञों में प्रयुक्त होता है वह यजमान के आयु, सन्तति और पशुओं को क्षति पहुँचाता है।[17]

पाणिनीय शिक्षा में दुष्टाक्षर प्रयोग के दुष्प्रभाव को व्यक्त करते हुए कहा गया है कि दुष्टाक्षर आयुनाशक होता है, स्वर विही,न होने पर शारीरिक पीड़ा देने वाला होता है तथा वज्र होकर गिरता है।[18]

लौकिक संस्कृत वांग्मय के सामान्य प्रेमियों के लिए संस्कृत भाषा का शुद्ध, आदर्श उच्चारण सिखाना और भाषाशास्त्रियों के लिए वैदिक लौकिक संस्कृतभाषा तथा प्राकृतभाषा और अपभ्रंश भाषाओं के वर्णो का मौलिक यथार्थ ज्ञान प्राप्त करने में सहायता करना भी शिक्षा का प्रयोजन माना जा सकता है।

शिक्षा ग्रन्थों का प्रधान विषय वर्णोच्चारण विधि का निरूपण है। वर्णों का उच्चारण सम्यग् रूप से हो इसके लिए शिक्षा ग्रन्थों में उच्चारण विधि से सम्बन्ध रखने वाले विषयों का बड़ा ही उपादेय विवरण प्राप्त होता है। अनेक स्थलों में वर्णों के उच्चारण में जायमान दोषों से सम्बद्ध पारिभाषिक शब्द प्राप्त होते हैं जिनमें से कुछ प्रस्तुत हैं।

अपाय–

'अपाय' शब्द 'अप्' पूर्वक 'इ' धातु से निष्पन्न हुआ है। 'अपाय' का शाब्दिक अर्थ है 'दूर चले जाना', 'लुप्त हो जाना'। तात्पर्य यह है कि जब विद्यमान वर्ण का अनुच्चारण (लोप) कर दिया जाता है तब 'अपाय' संज्ञक दोष होता है।[19] यथा 'ऊनयी:' का उच्चारण करते समय 'यी' का लोप कर दिया जाता है और उच्चारण 'ऊनै:' होता है।

अम्बूकृत–

बद्ध ओष्ठ से उच्चारण 'अम्बूकृत' कहलाता है।[20] होठों को बन्द सा करके वर्ण का उच्चारण करने में अस्पष्टता आ जाती है, क्योंकि अधिकांश शब्द वक्ता के मुख में ही रह जाते हैं श्रोता के कानों तक नहीं पहुँच पाते। जब वर्ण के उच्चारण में यह दोष आ जाता है तो वह 'अम्बूकृत' संज्ञक होता है।

ग्रस्त–

जि"वामूल का निग्रह होने पर जो उच्चारण होता है वह 'ग्रस्त' संज्ञक दोष से युक्त होता है।[21] 'ग्रस्त' शब्द 'ग्रस्' धातु से निष्पन्न हुआ है, जिसका अर्थ है दबाया हुआ, नीचे किया हुआ। 'अ', 'आ' तथा क वर्ग के वर्णों में कभी-कभी जि"वा के मूल को नीचे दबा दिया जाता है जिससे सम्बद्ध वर्णों का उच्चारण अस्पष्ट हो जाता है और 'ग्रस्त' संज्ञक दोष की निष्पत्ति होती है।

निरस्त–

उच्चारण-स्थान तथा उच्चारणावयव का अपकर्ष होने पर 'निरस्त' संज्ञक दोष होता है।[22] 'निरस्त' शब्द 'निर्' उपसर्गपूर्वक 'अस्' धातु से निष्पन्न हुआ है, जिसका शाब्दिक अर्थ है इधर-उधर फेंका हुआ। जब कोई वर्ण अपने उच्चारण स्थान तथा करण से यथावत् उच्चारित न होकर इधर-उधर फेंक दिया जाता है अर्थात् अपने 'स्थान' तथा 'करण' से अपकृष्ट हो जाता है तब 'निरस्त' संज्ञक दोष होता है।

व्यथन–

वर्णों का उच्चारण शास्त्रविहित न करके अन्य रूप में करना 'व्यथन' कहलाता है।[23]

'व्यथन' शब्द 'काँपना', 'हिलना', 'विकृत होना' अर्थ वाली 'व्यथ्' धातु से निष्पन्न हुआ है। जब किसी वर्ण के उच्चारण में परिवर्तन कर दिया जाता है। अर्थात् विद्यमान वर्ण का उच्चारण अन्य प्रकार से किया जाता है तो वह 'व्यथन' संज्ञक दोष होता है। यथा- 'रथ्य:' का 'रस्य:' के रूप में उच्चारण करना 'व्यथन' संज्ञक दोष है।

शून–

वक्ता द्वारा खोखले मुख से उच्चारण करना 'शून' कहलाता है।[24]

'शून' का शाब्दिक अर्थ है खाली, खोखला। जब मुख में एक मुखावयव का दूसरे मुखावयव के साथ स्पर्शादि नहीं होता, मुख में खोखलापन सा आ जाता है और वर्णोच्चारण में कुछ अस्पष्टता सी आ जाती है तब 'शून' दोष की निष्पत्ति होती है। यह दोष मुख्यत: स्वर वर्णों में ही होता है।

संदष्ट–

जबड़ों के संश्लेषण से किया गया उच्चारण 'संदष्ट' अथवा 'दष्ट' कहलाता है।[25] 'संदष्ट' शब्द 'सम्' पूर्वक 'दंश्' धातु से निष्पन्न हुआ है, जिसका शाब्दिक अर्थ है 'दबाया हुआ', 'मिलाया हुआ।' तात्पर्य यह है कि जब किसी वर्ण के उच्चारण में दोनों जबड़े अत्यधिक समीप आ जाते हैं तो ध्वनि दाँतों के नीचे से दबकर निकलती है, जिसे 'संदष्ट' नामक दोष कहते हैं।

पाणिनीय शिक्षा में कहा गया है कि उच्चारण के क्रम में उच्चारण कर्ता को वर्णों का उच्चारण संदिग्ध, भययुक्त, उच्चध्वनियुक्त, अस्पष्ट, अनुनासिक, कठोर, मूर्ध्युक्त, अस्वाभाविक,

मन्दस्वर से, दन्तपीड़ित, शीघ्रता से, निरस्त, विलम्बित, गद्गद स्वर से, गाने की तरह, पीड़ित, पदाक्षर को ग्रस्त करके, उत्साहरहित होकर तथा नाक से नहीं करना चाहिए।[26]

याज्ञवल्क्य शिक्षा के अनुसार पदों का उच्चारण दीर्घ तथा विलम्बित नहीं करना चाहिए।[27] वर्णों का उच्चारण मधुर, सुव्यक्त होना चाहिए एवं पीड़ित नहीं होना चाहिए।[28]

वर्णों का उच्चारण कैसे करें, इस पर दृष्टान्त द्वारा बतलाया गया है कि जिस प्रकार शेरनी पुत्रें को गिरने और छेद होने के भय से डरी हुई दाढ़ों से ले जाती है और पीड़ित नहीं करती, उसी प्रकार वर्णों का उच्चारण करना चाहिए।[29]

गुनगुनाते हुए पढ़ने वाला, क्षिप्रतर गति से पढ़ने वाला, सिर हिला-हिला कर पढ़ने वाला, ठीक जैसा पुस्तक में लिखा है वैसा ही बिना उपयुक्त आरोह-अवरोह के पढ़ने वाला, बिना अर्थ समझे ही पढ़ने वाला तथा फँसे गले से पढ़ने वाला- ऐसे पाठक अधम माने जाते हैं।[30]

पाठक के पाठ में मधुरता, सुस्पष्टता, पदच्छेदता, सुस्वरता, धीरजता तथा लयसमर्थता आवश्यक है। ये पाठक के गुण माने गये हैं।[31]

शिक्षा-ग्रन्थों में मन्त्रों के शुद्ध उच्चारण के साथ ही हस्त संचालन का विशेष महत्त्व प्रख्यावित है।

कहा गया है कि जो पाठक हस्तसंचालन से रहित होकर वेदों का पाठ करता है, वह ऋग्वेद, यजुर्वेद तथा सामवेदों से जलकर नीच योनि में जन्म लेता है तथा जो पाठक स्वर, वर्ण तथा अर्थ-ज्ञान के साथ हस्त पूर्वक संचालन वेद का पाठ करता है वह इन तीनों वेदों से पवित्र होकर ब्रह्मलोक में पूजित होता है।[32]

जो पाठक सम्यक्रूपेण हस्तसंचालन तथा वर्णोच्चारण रहित होकर वेदों का पाठ करता है, वह अभीष्ट फल को प्राप्त नहीं करता है। जिस प्रकार की वाणी हो, पाणि की स्थिति भी उसी प्रकार होनी चाहिए।[33]

तर्जनी के मूल में अंगुष्ठ का अग्रभाग रखकर उदात्त स्वर का उच्चारण किया जाता है। अनामिका के मध्यभाग में रखकर स्वरित का तथा कनिष्ठिका के मध्यभाग में रखकर अनुदात्त स्वर का उच्चारण किया जाता है।[34] इस प्रकार उदात्त को तर्जन्याश्रित, प्रचय को मध्यमाश्रित, अनुदात्त को कनिष्ठिकाश्रित एवं स्वरित को अनामिकाश्रित जानना चाहिए।

शिक्षा-ग्रन्थों में इस विषय पर भी बल दिया गया है कि विद्याध्ययन योग्य गुरु के सानिध्य में रहकर ही करना चाहिए तथा सदाचारवान गुरु से अर्जित विद्या का अभ्यास द्वारा वर्द्धन करना चाहिए।

कुत्सित आचारहीन गुरु से शिक्षित, नीरस तथा अपकृष्ट अर्थ वाले अनधीत वेदों का पाठ करने पर पाप से उसी प्रकार मुक्ति नहीं होती, जिस प्रकार दुष्ट सर्प से आक्रान्त होने पर व्यक्ति को मुक्ति नहीं मिलती। इसके विपरीत सदाचार सम्पन्न आचार्य से अधीत शास्त्र, सुव्यक्त, सम्प्रदाय शुद्ध और सुव्यवस्थित होता है। इस प्रकार सुकण्ठ से सुस्वर उच्चारण किये जाने पर वेद सुशोभित होता है।[35]

शुश्रूषारहित विद्या यद्यपि में एवं गुणों द्वारा प्राप्त होती है, तथापि वह विद्या बन्ध्या यौवनवती के समान फलवान नहीं होती[36]

इस प्रकार शिक्षा-ग्रन्थों में ध्वनि सम्बन्धी विविध पक्षों पर विस्तृत तथा अत्यन्त उपादेय विवेचन है। इनके अनुशीलन से भली-भाँति सिद्ध होता है कि प्राचीन ऋषियों ने भाषा शास्त्र के इस आवश्यक अंग का कितना वैज्ञानिक अध्ययन किया था। आजकल के पाश्चात्य विद्वान् भी उच्चारण विद्या (फोनोलॉजी) के अन्तर्गत इस विषय का अध्ययन करते हैं। वर्तमान में उच्चारण के स्वरूप को समझने के लिए कई प्रकार के यन्त्र भी बनाये गये हैं। प्राचीन भारत में ये साधन उपलब्ध नहीं थे, तो भी इस विषय का इतना गम्भीर वर्णन तथा अनुशीलन प्राचीन भारतीयों की उच्चारण सम्बन्धी वैज्ञानिक गवेषणा का द्योतक है।

सन्दर्भः-

1. साक्षात्कृतधर्माण ऋषियों बभूवः तेखसाक्षात्कृत धर्मभ्योखवरेभ्य उपदेशेन मन्त्रम् सम्प्रादुः, उपदेशाय ग्लायन्तोखवरे बिल्मग्रहणायेमं ग्रन्थं समाम्नासिषुर् वेदं च वेद्(गानि च यास्ककृत निरुक्त 1/6/4 सम्पा0- डॉ0 उमाशंकर शर्मा 'ऋषि', प्रकाशन- चौखम्बा विद्या भवन, वाराणसी, 1959
2. छन्दः पादौ तु वेदस्य हस्तौ कल्पोखथ पठ्यते। ज्योतिषामयनं चक्षुर्निरुक्तं श्रोत्रमुच्यते। शिक्षा घ्राणं तु वेदस्य मुखं व्याकरणं स्मृतम्। तस्मात्स(गमधीत्यैव ब्रह्मलोके महीयते।। पाणिनीय शिक्षा0 41-42, सम्पा0 डॉ0 दामोदर महतो, प्रकाशन- मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, 1990
3. मन्त्रे हीनः स्वरतो वर्णतो वा मिथ्या प्रयुक्तो न तमर्थमाह। स वाग्वज्रो यजमानं हिनस्ति यथेन्द्रशत्रुः स्वरतोखवराध्त्।। महाभाष्य, प्रकाशक- मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, 1962
4. व्याकरणं नामेयमुत्तरा विद्या। सोखसौ छन्दशास्त्रेष्वभिविनीत उपलब्याखवगन्तुमुत्सहते। महाभाष्य 1/2/32, प्रकाशक- मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, 1962
5. स्वरवर्णाद्युच्चारणप्रकारो यत्रेपदिश्यते सा शिक्षा। सायणाचार्यकृत ऋग्वेदभाष्यभूमिका, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, पृ0 49, 2000ई012
6. वर्णः स्वरः मात्र बलं साम सन्तान इत्युक्त शीक्षाध्यायः। तैत्तरीपोपनिषद् 1/2, गीताप्रेस, गोरखपुर (सं0 1993 से 2055)
7. त्रिषष्टिश्चतुःष्टिर्वा वर्णाः शम्भुमते मताः। प्राकृते संस्कृते चापि स्वयं प्रोक्ताः स्वयम्भुवा।।, पाणिनीय शिक्षा-3, सम्पा0 डॉ0 दामोदर महतो, प्रकाशन- मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, 1990
8. उदात्तश्चानुदात्तश्च स्वरितश्च स्वरास्त्रयः।, पाणिनीय शिक्षा (भूमिका, पृ0 15)।।, सम्पा0 डॉ0 दामोदर महतो, प्रकाशन- मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, 1990
9. उच्चैरुदात्तः। अष्टाध्यायी 1/2/29, सम्पा0 गोपालशास्त्री दर्शनकेशरी,

चौखम्बा संस्कृत पुस्तकालय, वाराणसी, 2013
10.नीचैरनुदात्तः। अष्टाध्यायी 1/2/30, सम्पा0 गोपालशास्त्री दर्शनकेशरी, चौखम्बा संस्कृत पुस्तकालय, वाराणसी, 2013
11.समाहारः स्वरित। अष्टाध्यायी 1/2/31, सम्पा0 गोपालशास्त्री दर्शनकेशरी, चौखम्बा संस्कृत पुस्तकालय, वाराणसी, 2013
12.एकमात्रे भवेध्रस्वो द्विमात्रे दीर्घ उच्यते। त्रिमात्रस्तु प्लुतो ज्ञेयो व्यञ्जनं चार्धमात्रकम्।। याज्ञवल्क्य शिक्षा 13, शिक्षा संग्रह, प्रकाशक- डॉ0 हरिश्चन्द्रमणि त्रिपाठी, सम्पूर्णानन्दन संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी, 1989
13.अष्टौ स्थानापि वर्णानामुरः कण्ठः शिरस्तथा जि"वामूलं च दन्ताश्च नासिकोष्ठौ च तालु च।। पाणिनीय शिक्षा 1313, सम्पा0 डॉ0 दामोदर महतो, प्रकाशन- मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, 1990
14.वर्णानां च स्वराणां च मात्रया बलसाम्ययोः। पदान्ताद्यो: संहिताया विचारो यत्र लभ्यते।। तत्सम्ब)श् चाखपरेखपि विषया यत्र वर्णिताः। भवन्ति सा हि प्रथमा विद्या शिक्षेति भाषिता।। कौण्डिन्न्यायन शिक्षा (उपक्रमाध्याय, श्लो0 2, 3), शिवराज आचार्य कौण्डिन्न्यायन, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, 1992
15.शिक्षा स्वरवर्णोच्चारणोपदेशकं शास्त्रम्। ऋग्वेद प्रातिशाख्य, पृ0 24.सम्पा0 विरेन्द्र कुमार शर्मा, चौखम्बा संस्कृत पुस्तकालय, वाराणसी, 1990
16.शिक्षा घ्राणं तु वेदस्य। पाणिनीय शिक्षा 42, सम्पा0 डॉ0 दामोदर महतो, प्रकाशन- मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, 1990
17.प्रहीणः स्वरवर्णाभ्यां यो विमन्त्रः प्रयुज्यते। यज्ञेषु यजमानस्य रुषत्यायुः प्रजाम् पशून्।। नारदीय शिक्षा 1/1/6, शिक्षा संग्रह, प्रकाशक- डॉ0 हरिश्चन्द्रमणि त्रिपाठी, सम्पूर्णानन्दन संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी, 1989
18.अवक्षरमनायुष्यं विस्वरं व्याधिपीडितम्। अक्षता शस्त्ररूपेण वज्रं पतति मस्तके।। पाणिनीय शिक्षा 53, सम्पा0 डॉ0 दामोदर महतो, प्रकाशन- मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, 1990
19.शास्त्रीयवर्णधर्मस्य विलोपोखपाय उच्यते। मुनिना शौनकेनैव ग्रन्थे बा"वृच्यपारषदे।। कौण्डिन्न्यायन शिक्षा 5/110, शिवराज आचार्य कौण्डिन्न्यायन, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, 1992
20.अम्बूकृतं सनिष्ठीवम् ब(ोष्ठोच्चारणं स्मृतम्। तत् क्वचित् त्वविशिष्योक्त् क्वचिदुक्तं स्वरस्थितम्।। कौण्डिन्न्यायन शिक्षा 5/118, शिवराज आचार्य कौण्डिन्न्यायन, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, 1992
21.जि"वामूलं सन्निगृ"योच्चारं ग्रस्तमुच्यते। कण्ठये स्वरे कवर्गे च दोषोखयं सम्भवी स्मृतः।। कौण्डिन्न्यायन शिक्षा 5/120, शिवराज आचार्य कौण्डिन्न्यायन, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, 1992
22.निरस्तं वा निरासो वा स्थानस्य करणस्य च। अपकर्षे भवेद् दोषोखथवाखपि त्वरितोदिते।।, कौण्डिन्न्यायन शिक्षा 5/115, शिवराज आचार्य कौण्डिन्न्यायन, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, 1992
23.वर्णधर्मस्य शास्त्रेण विहितस्थाखन्यथाकृतिः। या त(व्यथनं प्रोक्तं मुनिना शौनकेन हि।। कौण्डिन्न्यायन शिक्षा 5/111, शिवराज आचार्य कौण्डिन्न्यायन, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, 1992
24.शुषिरीकृतवक्त्रेणोच्चारितं शूनमुच्यते। कौण्डिन्न्यायन शिक्षा 5/119, शिवराज आचार्य कौण्डिन्न्यायन, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, 1992
25.हन्वोः संश्लेषणेनोच्चारणं संदष्टमुच्यते। स्वरे शुद्धे च रक्ते च दोषोखयं सम्भवी स्मृतः।। कौण्डिन्न्यायन शिक्षा 5/136 15, शिवराज आचार्य कौण्डिन्न्यायन, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, 1992
26.शक्तिकृतं भीतमुद्घुष्टमव्यक्तमनुनासिकम्। काकस्वरं शिरसिगं तथा स्थानविवर्जितम्।। पाणिनीय शिक्षा 34, सम्पा0 डॉ0 दामोदर महतो, प्रकाशन- मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, 1990 उपांशुदष्टं त्वरितं निरस्तं विलम्बितं गद्गदितं प्रगीतम्। निष्पीडितं ग्रस्तपदाक्षरं च वदेन्न दीनं न तु सानुनास्यम्।। पाणिनीय शिक्षा 35, सम्पा0 डॉ0 दामोदर महतो, प्रकाशन मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, 1990
27.न कुर्वीतं पदं दीर्घं न चात्यन्तविलम्बितम्। पदस्य ग्रहणं मोक्षं यथा शीघ्रगतिर्हयः।। याज्ञवल्क्य शिक्षा 45, शिक्षा संग्रह, प्रकाशक- डॉ0 हरिश्चन्द्रमणि त्रिपाठी, सम्पूर्णानन्दन संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी, 1989
28.मधुरं चापि नाव्यक्तम् सुव्यक्तं न च पीडितम्। सनाथस्यैव देशस्य न वर्णाः सक्त्करं गताः।। याज्ञवल्क्य शिक्षा 196, शिक्षा संग्रह, प्रकाशक- डॉ0 हरिश्चन्द्रमणि त्रिपाठी, सम्पूर्णानन्दन संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी, 1989
29.व्याघ्री यथा हरेत् पुत्रन् दंष्ट्राभ्यां न च पीडयेत्।। भीता पतनभेदाभ्यां तद्वत् वर्णान् प्रयोजयेत।। पाणिनीय शिक्षा 2516, सम्पा0 डॉ0 दामोदर महतो, प्रकाशन- मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, 1990
30.गीती शीघ्री शिरः कम्पी यथालिखित पाठकः। अनर्थज्ञोखल्पकण्ठश्च षडेते पाठकाधमाः।। पाणिनीय शिक्षा 32, सम्पा0 डॉ0 दामोदर महतो, प्रकाशन- मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, 1990
31.माधुर्यमक्षरव्यक्तिः पदच्छेदस्तु सुस्वरः। धैर्यं लयसमर्थं च षडेते पाठके गुणाः।। पाणिनीय शिक्षा 33, सम्पा0 डॉ0 दामोदर महतो, प्रकाशन- मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, 1990
32.हस्तहीनं तु योखधीते स्वरवर्णविवर्जितम्। ऋग्यजुः सामभिर्दग्धे वियोनिमधिगच्छति।। हस्तेन वेदं योखधीते स्वरवर्णार्थसंयुतम्। ऋग्यजुःसामभि पूतो ब्रह्मलोके महीयते।। पाणिनीय शिक्षा 54-55, सम्पा0 डॉ0 दामोदर महतो, प्रकाशन- मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, 1990
33.हस्ताद्भ्रष्टः स्वराद्भ्रष्टो न वेदफलमश्नुते। याज्ञवल्क्य शिक्षा 24 यथा वाणी तथा पाणी रिक्तं तु परिवर्जयेत्। यत्र यत्र स्थिता वाणी पाणिस्तत्रैव तिष्ठति। याज्ञवल्क्य शिक्षा 46, शिक्षा संग्रह 17, प्रकाशक- डॉ0 हरिश्चन्द्रमणि त्रिपाठी, सम्पूर्णानन्दन संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी, 1989
34.उदात्तमाख्याति वृषोखक्त्गुलीनां प्रदेशिनीमूलनिविष्टमूर्ध। उपान्तमध्ये स्वरितं धृतं च कनिष्ठिकायामनुदात्तमेव।। पाणिनीय शिक्षा 43, सम्पा0 डॉ0 दामोदर महतो, प्रकाशन- मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, 1990
35.कुतीर्थागतं दग्धमपवर्णं च भक्षितम्। न तस्य पाठे मोक्षोखस्ति पापाहेरिव किल्विषात्।। सुतीर्थादागतं व्यक्तं स्वाम्नायं सुव्यवस्थितम्। सुस्वरेण सुवक्त्रेण प्रयुक्तं ब्रह्म राजते। पाणिनीय शिक्षा 50-51, सम्पा0 डॉ0 दामोदर महतो, प्रकाशन मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, 1990
36.शुश्रूषारहिता विद्या यद्यपि मेधगुणैः समुपयाति। बन्ध्येव यौवनवती न विद्या फलवती भवति।। नारदीय शिक्षा 28, शिक्षा संग्रह, प्रकाशक डॉ0 हरिश्चन्द्रमणि त्रिपाठी, सम्पूर्णानन्दन संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी, 1989

◆◆◆